अध्याय – 3
संयोजन के सिद्धान्त

भारतीय शिल्प शास्त्रों में चित्र, चित्राभास या आलेख्य की व्याख्या व्यापक अर्थ में की गयी है। चित्र षडंग भारतीय चित्रकला के मूलभूत सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर भारतीय चित्रकला आगे बढ़ी है। भारतीय चित्रकला के मर्म को समझने के लिए षडंग को समझना आवश्यक है क्योंकि भारतीय चित्रकला यथार्थवाद पर आधारित न होकर आदर्शवाद पर आधारित है।

षडंग

चित्र षडंग (षट+अंग) का अर्थ है छः अंग। प्राचीन मनीषी वात्स्यायन ने अपने ग्रन्थ कामसूत्र में चौंसठ कलाओं का वर्णन किया है। इनमें चित्रकला (आलेख्य) को चौथे स्थान पर रखा गया है। आलेख्य का वर्णन करते हुए वात्स्यायन ने चित्रकला के छः अंगों का वर्णन किया है। ''कामसूत्र'' की व्याख्या 11वीं शताब्दी में जयपुर के शासक सवाई जयसिंह प्रथम के दरबारी विद्वान पण्डित यशोधर ने अपने ग्रन्थ जयमंगला में की है। उन्होंने एक श्लोक के माध्यम से षडंग को स्पष्ट किया है–

रूपभेदाः प्रमाणानि भाव लावण्य योजनम्।
सादृश्यं वर्णिकाभंगः इति चित्र षडंगकम्।।

इस श्लोक में वर्णित छः अंग इस प्रकार हैं:–

रूपभेद :

षडंग में ''रूपभेद'' को प्रमुख माना गया है। इस शब्द युग्म (रूप+भेद) का तात्पर्य एक रूप की दूसरे रूप से भिन्नता है। रूपभेद के अभाव में किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति की पहचान असम्भव हो जाएगी। रूपभेद के कारण ही आकृति की विशिष्टता का ज्ञान होता है। रूप द्वारा वस्तु का ज्ञान होता है और भेद से उसे अलग पहचान (निजता) प्राप्त होती है। रूपों की भिन्नता विशिष्टता व निजता का बोध ही रूप भेद है। आचार्य अवनीन्द्रनाथ ने षडंग की व्याख्या करते हुए रूपभेद का आधार वस्तु के आकार, वर्ण एवं स्वभाव को माना है। इनके अनुसार ''सर्वप्रथम रूप से आंखों का परिचय होता है फिर धीरे धीरे उससे आत्मा का परिचय होता है। यही रूपभेद की प्रथम व अन्तिम बात है।''

भारतीय चित्रकला में वस्तु या व्यक्ति के स्वभाव को रूपभेद से जोड़कर चित्रांकन किया गया है। यहां वस्तु या व्यक्ति के बाह्य व आन्तरिक दोनों रूपों का ध्यान रखा गया है। बाह्य रूप जहां वस्तु के आकार प्रकार का ज्ञान कराता है वहीं अंतः रूप उसके भाव एवं प्रकृति का आभास कराता है। रूपभेद से ही राम–रावण, राक्षस–देवता, गृहस्थ–योगी का अन्तर स्पष्ट होता है।

प्रमाण :

आधुनिक कला में ''प्रमाण'' का अर्थ ''अनुपात'' है। लेकिन भारतीय प्राचीन कला में इसका अर्थ अधिक व्यापक है। किसी एक आकृति के साथ दूसरे आकार को संयोजित करते समय उनका आपसी अनुपात उचित हो तथा एक ही आकृति के भिन्न भिन्न अवयवों का उचित अंकन प्रमाण द्वारा निर्धारित किया जाता है।

भारतीय कला में प्रमाण निर्धारण के लिए यथार्थता को आधार नहीं बनाया गया है बल्कि विषयवस्तु की आवश्यकता एवं प्रस्तुत भावों को ध्यान में रखकर प्रमाण निश्चित किया जाता है। अजन्ता के भित्ति

चित्रों में भगवान बुद्ध की आकृति अन्य व्यक्तियों की तुलना में विशाल अंकित की गई है यह बुद्ध के भगवान स्वरूप को दर्शाने के लिए उचित है। प्रमाण के ज्ञान से ही कलाकार अंकित रूपों के महत्त्व का निर्धारण कर सकता है। भारतीय कला परम्परा में विभिन्न आकारों के लिए निश्चित प्रमाण बतलाए गए हैं। मानवाकृति अंकन के लिए ''ताल'' को इकाई माना गया है। मानव, राक्षस, देवता, बालक आदि के लिए अलग अलग प्रमाण निर्धारित हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में अलग अलग कार्य क्षेत्र के व्यक्तियों के लिए भी अलग–अलग प्रमाण माने गए हैं। प्रमाण विहीन चित्र को निरर्थक माना जाता है। प्रमाण का ज्ञान प्रत्येक कलाकार को होना चाहिए। इसे ''प्रमा शक्ति'' कहा गया है इसी से कलाकार दूर निकट, विशाल–लघु, समुद्र–तालाब, पेड़ पहाड़ आदि का उचित अंकन कर पाता है।

भाव :

कला में भाव का तात्पर्य निहित विचारों से है जो कलाकार अपनी रचना के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है। स्पष्ट है यदि भावांकन नहीं होगा तो कलाकृति अधूरी होगी क्योंकि कलाकृति की पूर्णता तभी होती है जब उसे देखने वाले के मन में भी वही भाव उत्पन्न हो जाएं जो उसे बनाते समय कलाकार के मन में थे। भाव प्रधान चित्र श्रेष्ठ माना जाता है।

भारतीय वाङ्मय में भाव को विशेष महत्त्व मिला है। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में भाव को रस निष्पत्ति का आधार माना गया है। नाट्य शास्त्र में आठ स्थाई भावों का वर्णन हैं –

रतिर्हाश्च शोकश्य क्रौधोत्साहौ भयं तथा

जुगुप्सा विस्मदश्चेति स्थायी भावाः प्रकीर्तिताः।

(रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय) इन आठ भावों में बाद में निर्वेद (शान्त) को और जोड़ा गया है इस प्रकार कुल नौ स्थाई भावों के आधार पर विभिन्न रसों की अनुभूति होती है।

चित्र में उक्त भाव दर्शाने के लिए रूपाकारों का चयन, मुद्राएं, वर्ण एवं प्रतीकों का प्रयोग भी भाव के अनुरूप किया जाता है। भाव को चित्र का प्राण तत्त्व माना गया है।

लावण्य योजना :

लावण्य योजना का शाब्दिक अर्थ सज्जा माना गया है। चित्र का प्रथम उद्देश्य सौन्दर्य की प्रस्तुति करना होता है। लावण्य योजना इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अहम् है। भाव एवं विषयवस्तु चित्र के आंतरिक विचारों को दर्शाते हैं वहीं लावण्य योजना चित्र के बाह्य सौन्दर्य को संवारने का कार्य करती है। रायकृष्ण दास के अनुसार चित्र में भाव के साथ लावण्य योजना भी आवश्यक है। वात्स्यायन ने चित्र में लावण्य योजना के लिए विभिन्न उपाय बताए हैं। जिस प्रकार सुन्दर स्त्री आभूषणों से एवं लज्जाशील होने से अधिक निखर उठती है, उसी प्रकार लावण्य योजना के सहारे चित्र भी कांतिमय बन जाता है।

सादृश्य :

सादृश्य (सः+दृश्य) का अर्थ ''के जैसा'' होता है। अर्थात किसी वस्तु की आकृति को बनाते समय किसी अन्य आकृति के रूप की कल्पना करना। इसका उद्देश्य चित्र में अंकित आकारों के गुणों की पूर्ण अभिव्यक्ति करना होता है। भारतीय साहित्य में नखशिख वर्णन की परम्परा रही है।

हंसा गमणि कदली जंघा, कटि केहर जिमि खीण

मुख ससहर खंजन नयण, कुच श्रीफल कंठ बीण। (ढोला मारू)

कविता में वर्णित इस नख शिख वर्णन को आधार मानकर राजस्थानी चित्रकला में सादृश्य दर्शाते हुए नायिका छवि का अंकन अनेक बार हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में सादृश्य को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा ने सादृश्य का एक अर्थ ''उचित'' भी माना है। व्यक्ति के गुणों को दर्शाने के लिये सादृश्य का होना जरूरी होता है।

वर्णिका भंग :

रंगों के उचित प्रयोग को ही वर्णिका भंग के सन्दर्भ में देखा जाता है। रंग चित्रकला का वह तत्त्व है जिस पर दर्शक की सर्वप्रथम दृष्टि पड़ती है। चित्रकार को रंग का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। रंगों की प्रकृति भी अलग अलग होती है। विषयवस्तु एवं भावों के अनुरूप रंगों का चयन किया जाता है। भरतमुनि ने रंगों को भावों के साथ जोड़ा है–

श्यामोभवति शृंगारः सितो हास्यः प्रकीर्तितः।

(श्याम रंग शृंगार रस का एवं श्वेत हास्य का प्रतीक है।)

वर्ण के उचित प्रयोग के बिना चित्र षडंग के शेष पांचों अंग भी महत्त्वहीन हो जाते हैं। शिल्प शास्त्रों में मुख्य एवं मिश्र वर्णों का वर्णन मिलता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में नीला, पीला, हरा सफेद व काला रंग मूल वर्ण माने गए हैं तथा शेष को मिश्रित रंगों की श्रेणी में रखा गया है। हालांकि वर्तमान में लाल, नीला व पीला मुख्य रंग माने जाते हैं। काले व सफेद को अवर्णीय कहा गया है।

इस प्रकार भारतीय चित्रकला के उक्त छः अंग (चित्र षडंग) चित्र रचना के आधारभूत निर्देशक तत्व माने गए हैं। इनका पालन प्राचीनकाल से लेकर भारतीय लघुचित्र शैलियों तक दिखाई देता है। भारतीय चित्रकला की आदर्श छवि भी इन अंगों की अनुपालना से निर्मित हुई है।

संयोजन के सिद्धान्त

संयोजन का अर्थ रचने या सृजित करने से है, जिसमें विभिन्न तत्त्वों का सुन्दर समन्वय होता है। चित्रकार जब किसी चित्रकृति का निर्माण करता है तो वह रेखा, रूप, रंग आदि की मधुर संगति करता है। कला के विविध तत्त्वों को प्रयोग करने के लिए वह जिन आदर्शों की पालना करता है वे संयोजन के सिद्धान्त कहलाते हैं। आकर्षक एवं सम्पूर्ण चित्र की रचना के लिए निम्नलिखित सार्वभौमिक सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाता हैः–

1. एकता (सहयोग)
2. सन्तुलन
3. लय (प्रवाह)
4. सामंजस्य
5. प्रभाविता
6. अनुपात
7. परिप्रेक्ष्य
8. स्थितिजन्य लघुता

एकता (सहयोग)

चित्र में प्रयुक्त (अंकित) किए जाने वाले रूपाकारों के आपसी सम्बन्ध जिनके द्वारा चित्र ''एक'' दिखाई दे तथा उनमें बिखराव न आए, यह एकता का कार्य है। एकता अथवा सहयोग द्वारा संयोजन में प्रस्तुत आकृतियों व विषयवस्तु में भावनात्मक रिश्ता उत्पन्न किया जाता है जिसके कारण चित्र में सम्पूर्णता आती है तथा निरर्थक बिखराव से बचाया जा सकता है। एक ही कलाकृति में कई चित्रों का आभास ना हो, यह एकता का उद्देश्य है।

चित्र में सहयोग निर्धारण : चित्र में एकता बनाए रखने के लिए रूपाकारों का अंकन महत्त्वपूर्ण होता है। लेकिन सहयोग बनाए रखने के प्रयास में आकारों की रचना नीरस हो जाती है। इसलिए आकृतियों

में समानता होते हुए भी उन्हें ''एक जैसा'' होने से बचाना चाहिए तथा ''अनेकता में एकता'' के भाव उत्पन्न करने के प्रयास किए जाने चाहिए। आकृतियों के आकार व स्थान निर्धारण से सहयोग व गतिशीलता बनी रह सकती है। सहयोग निर्धारण की निम्नलिखित विधियाँ महत्त्वपूर्ण हैं–

विरोधाभास द्वारा : चित्र में एकता के लिए आकारों की विरोधाभासी प्रकृति भी प्रयोग में लायी जा सकती है। यह न केवल आकर्षक है बल्कि चित्र में गति व ऊर्जा का संचार भी करती है।

पुनरावृत्ति द्वारा : चित्र में आकृतियों की पुनरावृत्ति करके दृष्टिगत एकता का भाव उत्पन्न किया जा सकता है। हालांकि कई बार पुनरावृत्ति से एक रसता आ जाती है इससे बचने के लिए आकारों को छोटा बड़ा बनाना चाहिए।

दृष्टिपथ द्वारा : चित्र में रूपाकारों को निश्चित क्रम में व्यवस्थित करके एक दृष्टिपथ का निर्माण किया जा सकता है। इस दृष्टि से कलाकृति के सभी अवयव एक दूसरे से जुड़े लगते हैं व दर्शक कलाकृति का सुगमता से आनन्द ले सकता है।

उक्त विधियों के प्रयोग से चित्र में एकता स्थापित की जा सकती है।

सन्तुलन

चित्र में प्रयुक्त तत्त्वों (रूप, रंग, रेखा आदि) की ऐसी व्यवस्था जिससे कलाकृति का दृष्टिगत भार (आकर्षण) सर्वत्र समान रहे, ऐसी कलाकृति संतुलित होती है। चित्र के मध्य भाग को केन्द्र मानकर रूपाकारों को उनके महत्त्व के अनुसार स्थान दिया जाता है। संतुलन के अभाव में चित्र किसी क्षेत्र विशेष में अधिक आकर्षक बन जाता है (वह भाग भारी हो जाता है) तथा कोई क्षेत्र अल्प आकर्षक या आकर्षण हीन (हल्का) हो जाता है।

दृष्टिगत भार : कलाकृति में प्रयुक्त रंग रूप आदि की आकर्षण क्षमता उनका भार कहलाती है। इसे देखकर महसूस किया जाता है यही दृष्टिगत भार है। जिस रंग अथवा आकार में दृष्टि को बांधने की अधिक क्षमता होगी, वह आकृति उतनी ही भारयुक्त (आकर्षक) होगी। प्रायः चित्र को संतुलित करने के लिए सम्मित व असम्मित दोनों प्रकार से संयोजन किया जाता है। सम्मित संयोजन साधारण व गतिहीन होता है लेकिन असम्मित संयोजन सरस व गतिपूर्ण माना जाता है।

चित्र में संतुलन स्थापना के लिए चित्र के विभिन्न अवयवों का उचित प्रयोग होना चाहिए क्योंकि सभी का अपना भार व अस्तित्व होता है।

रेखा का भार : चित्र में रेखा दिशा निर्देशन का कार्य करती है। इसकी निर्देशन शक्ति ही इसका भार है। रेखा के अनुचित प्रयोग से चित्र असन्तुलित हो जाता है। निर्देशन शक्ति के भार को ध्यान में रखकर रेखांकन करना चाहिए।

रूप (आकृति) का भार : किसी भी रूप (आकृति) का भार उसके आकार पर निर्भर करता है। जो आकृति जितनी बडी होगी वह उतनी ही भारी होगी। चित्रतल पर रूप व्यवस्था में बड़े आकारों को छोटे आकारों से सन्तुलित करते समय उनके स्थान (पास–दूर) को ध्यान में रखा जाता है।

चित्र में एक अदृश्य तुला कार्य करती है जिसका आलम्ब चित्र के मध्य में स्थित होता है। यहां तुला के समस्त नियम लागू होते हैं। जिस प्रकार तुला के एक तरफ ज्यादा भार होगा तो वह उधर झुक जाएगी इसी प्रकार से चित्र में भी आकारों के छोटे या बड़े (भारी या हल्के) होने से सन्तुलन गड़बड़ा जाएगा। दो समान भार वाली आकृतियों को केन्द्र से समान दूरी पर रखा जाता है। अधिक भारी आकृति को केन्द्र के नजदीक रखा जाता है तथा अल्प भार वाली आकृति दूर अंकित कर संतुलन स्थापित किया जाता

है। यह सन्तुलन का आलम्ब सिद्धान्त कहलाता है।

रंग का भार : रंग का मुख्य गुण आकर्षण है। वर्ण की आकर्षण शक्ति ही उसका भार निर्धारित करती है। प्रायः तीव्र या गर्म रंग (लाल, पीला के साथ) अधिक भार वाले होते हैं, जबकि ठण्डे रंग (हरा, नीला, बैंगनी) अपेक्षाकृत हल्के होते हैं। रंगों की आकर्षण शक्ति को समझकर इनका प्रयोग करना चाहिए। बड़ी आकृति में शान्त व हल्के रंग तथा छोटी आकृतियों में तीव्र रंगों के प्रयोग से सन्तुलन उत्पन्न होता है। विरोधाभासी तानों से तथा रंगों की पुनरावृत्ति से भी संतुलन दर्शाया जा सकता है। सन्तुलन के लिए एक ही मान की रंगतों का प्रयोग उचित होता है।

प्रवाह

संयोजन में प्रवाह का तात्पर्य चित्रतल पर दृष्टि के स्वतन्त्र व आनन्दमयी विचरण से है। दर्शक किसी एक जगह पर उलझ कर न रहे बल्कि क्रमशः पूरे दृश्य का रसास्वादन कर सके।

किसी भी सपाट अन्तराल पर एक बिन्दु मात्र के अंकन से चित्रभूमि का विभाजन हो जाता है। तालाब के शान्त पानी में एक कंकर के फेंकने से पूरे पानी में स्पंदन उत्पन्न होता है वैसे ही एक बिन्दु अक्षत भूमि पर संवेग उत्पन्न कर देता है। बिन्दु या बिन्दुओं से उभरी आकृति प्रवाह मय भी हो सकती है या उलझन भरी भी। अंकन से गति सरल, कोणीय या लहरदार हो सकती है। प्रवाह के लिए लहरदार (लयपूर्ण) गति सर्वश्रेष्ठ मानी गई है क्योंकि इस प्रकार की गति में संगीतात्मकता होती है तथा यह प्रकृति के अधिक नजदीक होती है।

प्रवाहपूर्ण संयोजन से चित्र में सामन्जस्य की वृद्धि होती है। प्रवाह स्थापना के लिए विभिन्न तरीकों से रूपाकारों की व्यवस्था व संयोजन किया जा सकता है जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं।

आकारों की आवृति द्वारा – प्रयुक्त आकारों में से कुछ को दोहराकर चित्र में लयात्मकता लाई जा सकती है। राजस्थानी चित्रशैली में आलंकारिक पेड़ पौधे इसके उत्तम चित्र उदाहरण हैं। यह आवृत्ति आकाशोन्मुखी, क्षितिजाकार या कर्णवत हो सकती है।

अनुक्रमिक अंकन द्वारा – आकृतियों को अलग अलग आकारों (छोटे–बड़े) में दोहराकर भी प्रवाह उत्पन्न किया जा सकता है। यह सरल अथवा जटिल हो सकता है। आकृतियों की असम्मित पुनरावृत्ति दर्शक की दृष्टि को निर्देशित करती है अर्थात एक सहज दृष्टिपथ का निर्माण करती है जिसके सहारे दर्शक स्वतन्त्र विचरण करता है।

रेखा गति द्वारा – चित्र में लयात्मक एवं लहरदार रेखाओं द्वारा रूपाकारों का सृजन सहज प्रवाह का निर्माण करता है। अजन्ता के चित्र इसके उत्तम उदाहरण हैं। इस प्रकार के रेखांकन से आकृतियों में कोणीयता नही आने से गति बाधित नही होती है।

सामंजस्य

सामंजस्य का तात्पर्य कलाकृति में अंकित आकार, रंग, विषय आदि के आपसी तालमेल से है। चित्र में प्रस्तुत भाव एवं तत्त्वों में कहीं भी विविधता ना हो, वे आपस में गुंथे हों यही सामन्जस्य है।

चित्र में आवश्यकता के अनुसार सामंजस्य निर्धारित किया जाता है। विषय के सटीक प्रस्तुतिकरण के लिए हांलाकि विरोधाभास का प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन इससे सामंजस्य को क्षति ना पहुंचे इसका ध्यान रखा जाना चाहिए।

चित्र में सामंजस्य स्थापित करने के लिए चित्र के सभी तत्त्वों का समन्वित योगदान रहता है।

रेखा सामंजस्य : चित्र में रेखा प्रधान तत्त्व होता है। रेखा की शक्ति से संयोजन में सामन्जस्य स्थापित किया जा सकता है तथा रेखा के अनुचित प्रयोग से चित्र में उलझन उत्पन्न हो सकती है। आवृत्ति रेखाएं, अवरोधक रेखाएं, संधि रेखाएं आदि मिलकर मधुर रूप सर्जना कर सकती हैं। आवृत्ति रेखाओं से संयोजन अत्यन्त साधारण हो जाता है वहीं अवरोधक रेखाओं से उलझन पैदा होती है। इन सबको मधुर संयोजन में ढ़ालने के लिए संधि रेखाएं अपनी भूमिका निभाती हैं। जहां रूपाकारों से परिवर्तन सम्भव नही होता वहां संधि रेखओं से सामंजस्य स्थापित किया जाता है।

रूप सामंजस्य : चित्र में मुख्य एवं सहायक रूपाकारों को तल पर इस प्रकार व्यवस्थित करना कि उनमें आपसी संबंध मधुर रहे तथा संयोजन आकर्षक हो। पुनरावृत्ति, छोटा बड़ा तथा उनके चित्र में महत्त्व अथवा गौण रूप से अंकित कर रूप सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। रूप सामंजस्य से चित्र में कलात्मकता उत्पन्न होती है।

वर्ण सामंजस्य : विभिन्न प्रकार की वर्ण संगति से चित्र में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। रंगों का विविधतापूर्ण होना आवश्यक है अन्यथा चित्र में एकरसता आ जाएगी, लेकिन चित्र में उनका प्रयोग करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विविध रंगतों के प्रयोग से कहीं वर्ण सामंजस्य का ह्रास तो नहीं हो रहा है। चित्र में समान रंगभार वाली रंगतों को अपनाना चाहिए। सजातीय वर्णसंगति से सामन्जस्य स्थापित करते हुए रंगतों को भी संतुलित ढ़ंग से अपनाया जा सकता है।

पोत सामंजस्य : किसी भी वस्तु के यथार्थवादी अंकन के लिए पोत का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। पोत के अभाव में खुरदुरा, मुलायम, कठोर की अनुभूति नहीं हो पाती है। चित्र में प्रयुक्त रूपाकारों के धरातलीय गुणों (पोत) का व्यवस्थित व आकर्षण युक्त प्रयोग करना चाहिए। अत्यन्त मृदु अथवा अत्यन्त कठोर पोत को एक साथ प्रयोग करने के लिए कलाकार का कुशल होना आवश्यक है अन्यथा यह सामंजस्य के लिए हानिकारक हो सकता है।

विचार सामंजस्य : विषय अथवा विचार चित्र का ध्येय होता है। एक चित्र में किसी एक विचार को महत्त्व मिलना चाहिए। विचार विविधता होने से दर्शक के मन में उलझन पैदा होती है। ऐसे में समस्त तत्त्वों का प्रयोग करते समय एक ही विचार को पोषण मिले यह ध्यान रखा जाना चाहिए। विचार सामंजस्य का तात्पर्य यही है।

सहयोग व सामंजस्य में संबंध : सहयोग तथा सामन्जस्य एक दूसरे को बल प्रदान करते हैं। लेकिन दोनों की भूमिका भिन्न होती है। सहयोग (एकता) के द्वारा संयोजन में आकारों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उनमें अलग अलग चित्रों का भ्रम उत्पन्न ना होकर उनमें अनुभूत एकता दिखाई दे। सामंजस्य चित्र के तत्त्वों के आपसी मेलजोल पर आधारित होता है। जिससे चित्र में सौन्दर्य व आकर्षण बढ़ जाता है।

प्रभाविता

प्रभाविता (प्राबल्य) का तात्पर्य यह है कि, चित्र संयोजन में प्रयुक्त समस्त तत्त्वों को इस प्रकार व्यवस्थित करना कि मुख्य विचार या आकृति पर सर्वप्रथम दृष्टि पड़े। अन्य आकारों को उसके बाद उनके महत्त्वानुसार दर्शाना चाहिए।

अजन्ता के चित्रों में प्रभाविता का सुन्दर प्रयोग किया गया है। यहां भगवान बुद्ध को अन्य आकारों से बड़ा व आकर्षक बनाया गया है ताकि उनके भगवान स्वरूप को प्रतिष्ठित किया जा सके। पद्मपाणि

बोधिसत्व व मार विजय में ऐसा ही अंकन है। प्रभाविता का मुख्य उद्देश्य दर्शक को भटकने से बचाना होता है। मुख्य विषयवस्तु या आकार को प्रभाविता से अंकित करने पर आसानी से पहचान हो जाती है। प्राबल्य के कारण चित्र की एक रसता भी समाप्त होती है। चित्र में प्रभाविता दर्शाने की निम्नलिखित विधियां हो सकती हैं–

आकारों की उचित स्थापना द्वारा – कलाकृति में मुख्य व महत्त्वपूर्ण आकृति को मध्य में व आकर्षण युक्त बनाना चाहिए ताकि उसका महत्त्व कम ना हो।

रंगतों का विरोधाभासी प्रयोग – चित्र में मुख्य विषय को तीव्र रंगों से व सहायक आकारों को मध्यम या हल्के रंगों से अंकित करना चाहिए। इससे मुख्य आकार उभर कर सामने आता है।

रिक्त स्थान – मुख्य आकार के आसपास कुछ स्थान खाली होना चाहिए इससे दृष्टि को विराम मिलता है तथा मुख्य आकार का अस्तित्व मुखर होता है।

सज्जा – मुख्य चित्र केन्द्र को अधिक आकर्षक व सज्जापूर्ण बनाने से भी चित्र में प्रभाविता दर्शायी जा सकती है। इससे मुख्य आकृति की अलग पहचान बनती है।

अनुपात

अनुपात अथवा प्रमाण का अर्थ चित्रित आकारों के आपसी प्रमाण तथा आकृति के विभिन्न अवयवों के आपसी नाप तोल से है। किसी भी श्रेष्ठ चित्र की रचना करते समय उसमें अंकित किए जाने वाले विभिन्न रूपाकारों का आपसी प्रमाण निर्धारित किया जाता है। प्रमाण विहीन चित्र में सौन्दर्य तत्त्व की कमी आ जाती है। चित्र षडंग (भारतीय चित्रकला में छः अंग) के ''प्रमाण'' की भी यही भावना है।

उत्तम कलाकृति में प्रमाण केवल आकृतियों के आपसी नापजोख तक सीमित नही रहता अपितु चित्रभूमि (अन्तराल) विभाजन, रंगाकंन आदि में भी इसका महत्त्व होता है। चित्र भूमि को बांटते समय भी प्रायः 2:3 के प्रमाण को ध्यान में रखा जाता है। रंगों की आकर्षण शक्ति के अनुसार उन्हें हल्का या गहरा संयोजित किया जाता है ताकि उनका अनुपात आकर्षक लगे।

आकारों में प्रायः वर्गाकार की अपेक्षा आयताकार रूप अधिक गतिज होते हैं। मानवाकृतियों के अंकन में यथार्थ पर आधारित प्रमाण प्रयुक्त किए जाते हैं। भारतीय परम्परा में प्रमाण निर्धारण के उल्लेख कई स्थानों पर मिलते हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में व्यक्ति के कार्य, गुण आदि के आधार पर प्रमाण निश्चित किए गए हैं। पश्चिमी कला में प्रचलित प्रमाण चित्रकार माईकल एन्जिलो के बताए हुए हैं। माइकल एन्जिलो ने पुरूष को सिर की तुलना में आठ गुणा व स्त्री को साढ़े सात गुणा बड़ा बनाने को उचित माना है। लेकिन ये प्रमाण किसी आदर्श आकृति के अंकन के लिए तो उचित हो सकते हैं पर मानवाकृतियों की भिन्नता के कारण इनमें परिस्थितिजन्य परिवर्तन कर लेना चाहिए। प्रमाणहीन आकृतियों (विशेषरूप से मानवाकृतियों) का अंकन भारतीय शिल्पशास्त्रों में वर्जित किया गया है।

परिप्रेक्ष्य

भारतीय ग्रन्थों में क्षय वृद्धि का उल्लेख है तो आज इसे परिप्रेक्ष्य से जोड़ा जाता है। किन्तु दोनों पद्धतियाँ एक हैं या नहीं यह विवादास्पद है। क्षय वृद्धि यथार्थ परक संयोजन के लिए अहम् है। क्षय+वृद्धि अर्थात घटना व बढ़ना। चित्र में रूपाकारों को ठोस दर्शाने व उसकी त्रिआयामी छवि का भ्रम उत्पन्न करने के लिए क्षयवृद्धि का सहारा लिया जाता है। हालांकि चित्रभूमि सपाट व द्विआयामी होती है परन्तु आकारों को विशेष दृष्टि बिन्दु से इस प्रकार अंकित किया जाता है कि उनमें गहराई अथवा मोटाई का भ्रम होता

है। यूरोपीय चित्रकला में इस प्रकार का चित्रण हुआ है। क्षय वृद्धि के कारण ही रेल की पटरी दूरी पर मिलती हुई दिखाई देती है, दूर के पेड़ छोटे व अस्पष्ट दिखाई देते हैं।

ये प्रभाव मनोवैज्ञानिक होते हैं। इस प्रभाव को चित्रकार अपने संयोजन में क्षय वृद्धि के माध्यम से दर्शाता है। चित्र में क्षय वृद्धि के कई प्रकार होते हैं। रेखीय क्षय वृद्धि, वातावरणीय क्षय वृद्धि, नन्दतिक क्षय वृद्धि, रूप आच्छादन क्षय वृद्धि आदि। मूलतः ठोस आकारों के अंकन में क्षय वृद्धि का विशेष महत्त्व होता है। ज्यामितीय नियमों की पालना के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक अनुभवों को कलाकार अंकन करते समय प्रयोग में लाता है। क्षयवृद्धि के लिए चित्र तल, क्षितिज रेखा, दृष्टि बिन्दु, स्थिर बिन्दु, अदृष्टि बिन्दु आदि का विशेष महत्त्व होता है।

पीछे की ओर जाती समानान्तर रेखाओं को एक दूसरे की ओर झुकाकर अंकित करने से दूरी का आभास कराया जा सकता है यह रेखीय क्षय वृद्धि कहलाती है। पास की वस्तु के रंगों को चमकीला व आकृति को स्पष्ट तथा दूरी की आकृति को अस्पष्ट तथा धूमिल रंगों से दर्शाकर वातावरणीय क्षय वृद्धि अंकित की जा सकती है।

आकृतियों को छोटा बड़ा अंकित करके परम्परागत नन्दतिक क्षय वृद्धि का आभास करवाया जा सकता है। लघुचित्र शैलियों में इसका प्रयोग करके दूरी दर्शायी गई है। नन्दतिक क्षयवृद्धि के लिए आकारों की आच्छादन पद्धति भी काम में ली जाती है। इसमें एक आकार के पीछे दूसरे आकार का निर्माण किया जाता है जिससे पीछे की आकृति का कुछ भाग छुप जाता है।

स्थितिजन्य लघुता –

दर्शक की दृष्टि के विशेष कोण के कारण आकृति में जो लघुता का आभास होता है उसे स्थितिजन्य लघुता कहते हैं। चित्रों में गति व विशिष्ट मुद्राओं के अंकन में स्थितिजन्य लघुता का प्रयोग किया जाता है। देखते समय आकृति के किसी भाग में अधिक निकटता के कारण अथवा छोटे कोण के कारण या वस्तु में दूरी के कारण लघुता दिखाई देती है। इससे चित्र में यथार्थता का भाव आता है व गहराई उत्पन्न होती है। स्थितिजन्य लघुता भी चित्र में दूरी दर्शाने की एक विधि है। चित्र में सन्तुलित ढंग से यथार्थ एवं दूरी का आभास करवाने के लिए भूलम्ब का विशेष महत्त्व माना गया है।

संयोजन के सिद्धान्तों का औचित्य एवं अन्तःसम्बन्ध

किसी भी श्रेष्ठ कलाकृति के निर्माण के लिए निश्चित सिद्धान्तों का सुन्दर व युक्तिपूर्ण प्रयोग किया जाना चाहिए। संयोजन के सिद्धान्त चित्र को श्रेष्ठ बनाते हैं तथा कलाकार के अनुभव, उद्देश्य व भावोत्पादन के लिए अनिवार्य होते हैं। हालांकि इन सिद्धान्तों के प्रयोग करने की बाध्यता से कई बार कलाकार वास्तविक सृजन (जैसा वह करना चाहता है) में कठिनाई अनुभव करता है। कलाकार अपने अभ्यास व कलादृष्टि से इनके साथ विरोधाभासी प्रयोग भी करता है। अनेक कलाकारों ने इन सिद्धान्तों के विपरीत संयोजन किया है फिर भी अध्ययनरत कला अभ्यर्थी के लिए उचित व परिपूर्ण कला संयोजन हेतु ये सिद्धान्त श्रेष्ठ माध्यम हैं।

संयोजन के सभी सिद्धान्त कहीं ना कहीं एक दूसरे से संबंधित हैं। इनमें से एक सिद्धान्त की यदि पालना नहीं होगी तो निश्चित ही दूसरा सिद्धान्त भी प्रभावित होगा तथा कलाकृति का सौन्दर्य प्रभावित होगा। यदि प्रभाविता का प्रयोग अत्यधिक होगा तो संतुलन और प्रमाण गड़बड़ा जाएंगे और संतुलन के ना होने से सामांजस्य भी अधूरा रहेगा। यह कलाकार के अभ्यास पर निर्भर करता है। इसलिए इन

सिद्धान्तों को लागू करते समय प्रयोगधर्मिता व कलादृष्टि का होना जरूरी है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :–

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. कामसूत्र के रचियता कौन थे ?
2. जयमंगला ग्रन्थ किसने लिखा?
3. भरतमुनि द्वारा बताये गये स्थायी भाव कितने हैं ?
4. चित्र में सहयोग किसे कहते हैं ?
5. रुप सामंजस्य क्या है ?
6. वर्ण सामंजस्य किसे कहते हैं ?
7. प्रभाविता के तत्त्व कौनसे हैं ?
8. गति के प्रकार बताइये।
9. प्रवाह की परिभाषा दीजिये।
10. चित्र भूमि विभाजन क्या है ?
11. सहयोग की परिभाषा देते हुए चित्र में इसका उद्देश्य बताइये।
12. सामंजस्य व सहयोग के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिये।
13. वर्ण सामंजस्य को परिभाषित कीजिये।
14. सन्तुलन के सिद्धान्त का सम्बन्ध चित्र के सभी तत्त्वों के भार से कैसे है ?
15. आकृति संतुलन के आलम्बन सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिये।
16. प्रभाविता के तीन प्रमुख कार्य कौनसे हैं ?
17. प्रभाविता के लिए कौन से दो तत्त्व उत्तरदायी हैं तथा क्यों ?
18. चित्र में प्रवाह के योगदान को स्पष्ट करें।
19. रेखीय क्षय वृद्धि क्या है ?
20. चित्र में स्थितिजन्य लघुता का क्या महत्त्व है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय चित्र षडंगों को सविस्तार समझाइये ?
2. परिप्रेक्ष्य पर निबन्ध लिखिये।
3. चित्र में प्रवाह कैसे उत्पन्न किया जाता है? सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नियम का उल्लेख करते हुए उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।
4. दृष्टिगत भार के सन्दर्भ में सन्तुलन की व्याख्या उदाहरण सहित कीजिये।
5. ''अनेकरूपता में सहयोग'' पर निबन्ध लिखिये।
6. संयोजन के सिद्धान्तों पर सविस्तार लिखिये।